चिरंजीवी

कवच-कुण्डल — कर्ण की विरासत, एक युद्ध का प्रथम चरण

—भाग 1—

तुषार दुबे

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Tushar Dubey 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-81-69726-45-0

Cover design: Anuj
Typesetting: Simran

First Edition: June 2026

समर्पण

उन सभी पाठकों को,

जो महाभारत में केवल युद्ध नहीं — जीवन-दर्शन खोजते हैं।

— ✦ —

लेखक की बात

महाभारत पढ़ते समय मुझे हमेशा एक प्रश्न सताता था — वे लोग जो अमर हैं, जो इस पृथ्वी पर आज भी हैं, वे कैसे जी रहे होंगे? उनके लिए कलयुग का यह जीवन कैसा होगा?

अश्वत्थामा — जिसे कृष्ण ने शाप दिया था। जिसके माथे पर वह घाव है जो कभी नहीं भरता। जो पाँच हज़ार साल से इस पृथ्वी पर है — बिना किसी घर के, बिना किसी अपने के। वह क्या सोचता होगा? क्या उसे अपने पाप का बोझ अभी भी उसी तरह लगता होगा जैसे पहले दिन लगा था?

परशुराम — जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से मुक्त किया। जिनका क्रोध किंवदंती बन गया। लेकिन जब वह क्रोध शांत हुआ — तब वे क्या थे? एक योद्धा जो युद्ध से थक गया था? या एक गुरु जो अपने शिष्यों को याद करता था?

इन्हीं प्रश्नों से 'चिरंजीवी' का जन्म हुआ।

कर्ण मेरे सबसे प्रिय पात्रों में से एक है। उसकी कथा मुझे बचपन से रुलाती रही है। वह जन्म से अभिशप्त था — और फिर भी उसने जो किया, वह अद्भुत था। उसका दान — वह कवच-कुंडल जो उसके शरीर से अलग नहीं था, जो सूर्य का दिया हुआ था — उसे उसने मुस्कुराते हुए दे दिया। बिना सोचे। बिना शर्त के।

यही त्याग है। यही दान है। और यही वह पाठ है जो महाभारत हमें सिखाती है — कि देना जब सबसे कठिन हो, तब देना सबसे बड़ा होता है।

यह उपन्यास उसी परंपरा को आगे ले जाने का विनम्र प्रयास है।

— डॉ. तुषार दुबे

— ✦ —

पात्र-परिचय

परशुराम — भार्गव राम

त्रेतायुग के चिरंजीवी। शिव-प्रदत्त परशु के धारक। स्वभाव से अनुशासित और क्रोधी — लेकिन भीतर से करुणामय। कलयुग में वे एकांत में रहते हैं — महेंद्र पर्वत पर। वे युद्ध नहीं खोजते, लेकिन जब धर्म की रक्षा की बात आती है, तो फरसा उठाने में एक पल की भी देर नहीं करते।

— ✦ —

अश्वत्थामा — द्रोणपुत्र

द्वापरयुग के चिरंजीवी। आचार्य द्रोण के पुत्र। श्रीकृष्ण के शाप से अमर — माथे पर वह घाव जो कभी नहीं भरता। उस घाव से हर पल एक रक्त-वर्णी स्राव होता रहता है — यह उसका दंड है। पाँच हज़ार वर्षों से वह भटकता रहा है — कभी हिमालय में, कभी वनों में। उसने मनुष्यों की पीढ़ियाँ देखी हैं आती-जाती। उसने साम्राज्य उठते और गिरते देखे हैं। लेकिन वह एक ही गलती को नहीं भुला सका — उत्तरा का वह क्षण।

— ✦ —

नारद मुनि

त्रिकालदर्शी। देवर्षि। वीणा के साथ सदा विचरण करने वाले। उनकी उपस्थिति कभी आकस्मिक नहीं होती — जब नारद आते हैं, तो समझो कि घटनाएँ एक निर्णायक मोड़ पर हैं। इस कथा में वे साक्षी हैं — लेकिन जब आवश्यकता पड़े, वे दिशा भी देते हैं।

— ✦ —

सरस्वती की छाया — माणा की बुज़ुर्ग स्त्री

माणा में सदियों से निवास। वास्तव में सरस्वती नदी की चेतना का रूप। उसके पास रावण के बंधन-मंत्र और राक्षस ताल के रहस्य हैं। वह तब प्रकट होती है जब समय सही होता है — और जब वह जाती है, तो उसके पीछे केवल एक प्रश्न छोड़ती है।

— ✦ —

महातामस — रसातल की प्रमुख शक्ति

रसातल की समस्त सोई शक्तियों का अग्रदूत और नेतृत्वकर्ता। वह केवल बल नहीं है — वह चालाक भी है। वह मनुष्य की सबसे बड़ी कमज़ोरी को जानता है — स्मृति। वह उस दर्द को ढूँढता है जो सबसे गहरा हो, और वहीं वार करता है। उसका उद्देश्य — कवच-कुंडल। उसका हथियार — 'व्यर्थ है।'

— ✦ —

स तच्छरीरात्स्वयमेव देवः कृत्वा विभक्तं सहसा विमुच्य।
ददौ स कर्णः प्रहसन्निवेदं विस्रस्तगात्रो रुधिरं स्रवद्भिः॥

उस देव-पुत्र कर्ण ने वह कवच — जो उसके शरीर का ही एक भाग था — स्वयं अपने हाथों से अलग किया। एकाएक उखाड़ा। अंग-अंग से रक्त बह रहा था, देह टूट रही थी— और फिर भी वह मुस्कुराते हुए उसने वह सब दे दिया।

✦ ✦ ✦

प्रस्तावना

रसातल का द्वार खुलता है

राक्षस ताल — मानसरोवर से पश्चिम, कैलाश की छाया में
अमावस्या की रात — वर्तमान काल

— ✦ —

राक्षस ताल कभी नहीं सोता।

यह बात वे लोग जानते हैं जो उसके किनारे पर गए हैं — और वापस आए हैं। जो गए और नहीं आए, वे अब कुछ नहीं जानते। झील के आसपास के गाँवों में बुज़ुर्ग औरतें अपने बच्चों को समझाती हैं — राक्षस ताल के पास मत जाना, वहाँ की मिट्टी काली है, वहाँ का पानी काला है, और वहाँ जो परछाईं पड़े वह वापस नहीं आती।

बच्चे पूछते हैं — क्यों नहीं आती?

बुज़ुर्गें चुप हो जाती हैं।

उस अमावस्या की रात — जब आकाश में चाँद का एक कण भी नहीं था — एक तांत्रिक उस झील के किनारे बैठा था। वह तीन दिनों से वहाँ था। उसके सामने एक पुरानी हथेली के आकार की ताम्रपत्र पर कुछ लिखा था — वह भाषा जो संस्कृत से भी पुरानी थी, जो केवल असुर-परंपरा में जानी जाती थी।

उसने वह मंत्र पढ़ा था।

उसे नहीं पता था कि वह क्या कर रहा है।

उसे बस एक बात पता थी — जो उसने उस ताम्रपत्र पर पढ़ी थी। कि इस मंत्र को पढ़ने से शक्ति मिलती है। अमर होने की शक्ति। मृत्यु को जीतने की शक्ति।

मनुष्य हमेशा यही चाहता है — अमरता।

उस तांत्रिक ने वह मंत्र बोला। और वह झील — जो पहले से जागती थी — उसने सुना।

झील के तल में एक हलचल। इतनी गहरी, इतनी दूर, कि किनारे पर बैठे उस तांत्रिक को कुछ नहीं लगा। लेकिन झील के पक्षी — जो उस रात असावधानी से किनारे पर बैठे थे — एकाएक उड़ गए। सब एक साथ।

वह तांत्रिक डरा। उठा। भागा।

उसे नहीं पता था कि उसने क्या जागाया था।

फिर जल का रंग बदला। काले जल में और काला समाने लगा। और उस काले के भीतर से — एक आभा उठी।

रक्त-वर्णी।

वह आभा झील की सतह पर फैलने लगी — एक धीमी, स्पंदित चमक। झील की सतह पर कुछ उठा। आकार नहीं था उसका — या था, लेकिन स्थिर नहीं। वह बनता था, बिगड़ता था। लेकिन उसकी आँखें स्थिर थीं।

दो बिंदु — रक्त-वर्णी, दीप्त।

वे हज़ारों वर्ष सोए थे।

रावण के दाहकाल के बाद से। उस दिन से जब लंका की अग्नि आकाश तक पहुँची थी और उनका स्वामी — दस सिरों वाला, बीस भुजाओं वाला — राम के बाण से भूमि पर गिरा था। उस दिन वे लंका से निकले थे, उत्तर की ओर बढ़े थे, और कैलाश की छाया में इस झील के तल में उतर गए थे।

रावण गया तो वे भी सो गए।

लेकिन अब — वे जागे।

और जागते ही उन्होंने खोजा। वह जो उन्हें चाहिए था। वह जो किसी को भी — किसी को भी — अजेय बना सकता था।

कवच-कुंडल।

कर्ण का कवच-कुंडल — जो उससे लिया गया था, जो पृथ्वी के भीतर था, जो एक ऐसी गुफा में था जिसका द्वार सरस्वती की धारा बंद करती थी।

उन्होंने दिशा तय की।

उत्तर। माणा। जहाँ सरस्वती पृथ्वी में उतरती है।

✦ ✦ ✦

अनुक्रमाणिका

अध्याय एक: सरस्वती की गुप्त गुफा 1

अध्याय दो: धारा रुकती है 11

अध्याय तीन: अमावस्या की रात 22

अध्याय चार: तामस का पीछा 32

अध्याय पाँच: जहाँ सूर्य पहले उगता है 42

भाग एक का उपसंहार 56

भाग दो की झलक — स्यमंतक 57

अध्याय एक
सरस्वती की गुप्त गुफा

एक

माणा गाँव — बदरीनाथ से तीन किलोमीटर उत्तर शीतकाल का तीसरा पहर — भोर से दो घंटे पहले

माणा में सरस्वती नदी एक विशाल चट्टान के नीचे से गुज़रती है — और फिर पृथ्वी के भीतर उतर जाती है।

यह रहस्य नहीं है। रहस्य वे बातें होती हैं जो छिपाई जाती हैं। यह तो वहाँ खुली पड़ी थी — हर तीर्थयात्री देखता था, हर पुजारी जानता था, हर बच्चा जो माणा में पला था वह उस चट्टान के पास जाकर कहता था — देखो, नदी यहाँ से ज़मीन में उतर जाती है।

लेकिन जाती कहाँ है — यह कोई नहीं जानता था।

अश्वत्थामा जानता था।

वह उस चट्टान के पास खड़ा था। तीन दिनों से। वह खड़ा रहता था — घंटों — उस बिंदु को देखते हुए जहाँ जल भूमि में उतरता था। माणा के लोग उसे देखते तो समझते— कोई तपस्वी होगा, कोई साधु। वे उसे अनदेखा कर देते। पहाड़ों में ऐसे लोग आते-जाते रहते हैं जो किसी चीज़ को इतने ध्यान से देखते हैं कि देखना ही उनकी तपस्या बन जाए।

पहले दिन उसने केवल देखा था।

दूसरे दिन उसने महसूस किया था।

उस बिंदु पर — जहाँ सरस्वती अदृश्य होती थी — जल की धारा के नीचे — कुछ था। सूक्ष्म। लगभग न होने जैसा। एक आभा — रक्त-वर्णी, इतनी धीमी कि देखी न जाए लेकिन महसूस हो।

तीसरे दिन — आज — वह आभा गहरी हो गई थी।

अश्वत्थामा झुका। उसने ठंडे जल में हाथ डाला — उस बिंदु के पास, लेकिन उसे छुए बिना, जैसे कोई किसी जलती हुई चीज़ के पास हाथ ले जाए बिना छुए।

पानी कड़कड़ाता ठंडा था। हिमालय के इस शीतकाल में — जब साँस भी बाहर निकलकर धुआँ बन जाती हो — वह जल वैसा था जैसा हमेशा था। पत्थर की तरह ठंडा।

लेकिन उसकी उँगलियों के पास — उस बिंदु के नीचे — एक उष्मा थी।

वह उष्मा जो सूरज की नहीं होती। वह उष्मा जो किसी आग से नहीं आती। वह उष्मा— जो रसातल से आती है। जो उस स्थान की होती है जहाँ सृष्टि की वे शक्तियाँ सोती हैं जिन्हें सोते रहना चाहिए।

वह सीधा हुआ।

माथे का घाव जल रहा था। वह घाव जो कृष्ण के शाप से था, जो हज़ारों साल से ताज़ा था, जो कभी ठंडा नहीं हुआ — आज उसकी तीव्रता कुछ और थी। जैसे किसी ने उस जलन को हवा दी हो।

उसे पता था इसका कारण।

वह ऊर्जा जो उस आभा में थी — वह अपरिचित नहीं थी। वह अपनी थी। उस अस्त्र-शक्ति का एक अंश जो उसने कुरुक्षेत्र की उस रात छोड़ी थी — जब उसने ब्रह्मास्त्र चलाया था, उत्तरा के गर्भ पर। भगवान ने उसे निष्फल किया था। लेकिन ऊर्जा नष्ट नहीं होती — वह केवल रूप बदलती है। वह ऊर्जा पृथ्वी में समाई थी। और यहाँ — इस गुफा में, कर्ण के कवच-कुंडल की उस दिव्य ऊर्जा के पास — वह ठहर गई थी। दो शक्तियाँ — एक सूर्य की, एक उसकी अपनी — साथ में।

और रसातल की शक्तियाँ उसे सूँघ रही थीं।

अश्वत्थामा ने गाँव की ओर देखा। अँधेरे में माणा — पत्थर के घर, बंद खिड़कियाँ, धुएँ की वह हल्की गंध जो रात को चूल्हों से उठती है। एक कुत्ता कहीं भौंका — और फिर अचानक चुप हो गया, जैसे उसने हवा में कुछ महसूस किया हो और समझ गया हो कि आज भौंकना ठीक नहीं।

तीन रात।

उसके बाद वे आएँगी।

— ✦ —

दो

परशुराम की पदचाप का अपना स्वर होता है।

यह कोई असाधारण बात नहीं है — हर व्यक्ति की पदचाप में उसका स्वभाव होता है। जल्दबाज़ आदमी के क़दम तेज़ होते हैं, भारी मन वाले के भारी। लेकिन परशुराम की पदचाप में जो था — वह समय था। वह स्वर जो तब आता है जब कोई पृथ्वी को जानता हो — उसके हर पत्थर को, उसकी हर जड़ को — और पृथ्वी भी उसे जानती हो। एक परिचित भार। एक अपेक्षित स्पर्श।

अश्वत्थामा ने उन्हें देखने से पहले सुना।

वे ऊपर से आ रहे थे — वह पगडंडी जो माणा से बुग्याल की ओर जाती थी। सफेद वस्त्र जो उस अँधेरे में भी दिखते थे — उनमें एक हल्की आभा थी जो चाँदनी जैसी थी, हालाँकि चाँद उस रात था नहीं। जटाएँ — घनी, व्यवस्थित, एक भी धागा इधर-उधर नहीं। और फरसा — कंधे पर, उस सहजता से जैसे वह उनका अंग हो, जैसे उसके बिना वे अधूरे हों।

परशुराम रुके।

उन्होंने नदी को देखा। चट्टान को। उस बिंदु को।

फिर अश्वत्थामा को।

"तुम यहाँ पहले से हो।" यह प्रश्न नहीं था।

"तीन दिन से।"

परशुराम आगे आए। चट्टान के पास रुके। उस बिंदु की ओर देखा।

"रक्त-वर्णी आभा।" वे धीरे बोले — पहचान के स्वर में, जैसे कोई पुराना परिचित हो।

"हाँ।"

"राक्षस ताल से।"

"हाँ। तीन रात में वे आएँगी।"

सरस्वती बहती रही — अविरल, उस बातचीत से निर्लिप्त। जैसे नदियाँ हमेशा होती हैं — मनुष्यों की चिंताओं से परे।

"कब से?" परशुराम ने पूछा।

"पाँच रात पहले। अमावस्या को।" अश्वत्थामा ने कहा। "उस रात मैं बुग्याल में था। आभास हुआ — उत्तर से, राक्षस ताल की दिशा से। एक जागरण।"

परशुराम ने उसे देखा। उस दृष्टि से जो शब्दों को नहीं — उनके पीछे जो है उसे तौलती है। वह दृष्टि जो इक्कीस युद्धों में बनती है।

"तुमने पहले महसूस किया था यह।" यह भी प्रश्न नहीं था।

"हाँ।" अश्वत्थामा रुका। "यह ऊर्जा — पूरी तरह अपरिचित नहीं है।"

परशुराम प्रतीक्षा करते रहे।

अश्वत्थामा ने नदी की ओर देखा। उस बिंदु की ओर जहाँ वह रक्त-वर्णी आभा थी। बोलना कठिन था — यह बात, जो उसने इतने वर्षों में कभी किसी से नहीं कही थी। कभी कोई नहीं था जिससे कही जाती।

"कुरुक्षेत्र में जब मैंने ब्रह्मास्त्र चलाया था — उत्तरा के गर्भ पर —" वह रुका। उसके जबड़े की एक नस खिंची। "भगवान ने उसे निष्फल किया। लेकिन वह ऊर्जा — वह कहीं गई। नष्ट नहीं हुई। मुझे नहीं पता था कहाँ। लेकिन अब..."

उसने उस आभा को देखा।

"अब लग रहा है — वह यहाँ है। इसी गुफा में। कवच-कुंडल के साथ मिली हुई। और रसातल की शक्तियाँ यही महसूस कर रही हैं — वह double resonance। इसीलिए वे आ रही हैं।"

एक लंबी चुप्पी।

नीलकंठ की चोटी अँधेरे में अदृश्य थी — लेकिन उसकी उपस्थिति थी। जैसे बड़े पहाड़ों की होती है।

"तुमने यह पहले कभी नहीं कहा।" परशुराम ने कहा।

"किससे कहता?" अश्वत्थामा ने कहा।

आवाज़ में कड़वाहट नहीं थी। निराशा भी नहीं। केवल तथ्य था — वह तथ्य जो इतने वर्षों में तथ्य बन गया हो कि उसमें दर्द भी न रहे। केवल एक सूखापन।

"पाँच हज़ार साल में कोई नहीं था जो समझता।"

परशुराम चुप रहे।

कुछ उत्तर नहीं होते। यह उनमें से एक था।

— ✦ —

तीन

व्यास गुफा के पास — उसी रात

व्यास गुफा माणा के उस हिस्से में है जहाँ गाँव खत्म होता है और पहाड़ शुरू होता है।

वह छोटी-सी गुफा — जिसमें एक दीपक जलता है जिसे गाँव के लोग हर दिन जलाते हैं, हर दिन, बिना नागा — उस स्थान की याद है जहाँ महर्षि वेदव्यास ने महाभारत की रचना की थी। जहाँ वह महाकाव्य पहली बार शब्दों में उतरा था — जिसमें कर्ण था, द्रोण थे, अश्वत्थामा था।

अश्वत्थामा उस गुफा के पास अक्सर आता था। इसलिए नहीं कि वह श्रद्धा से आता था। बल्कि इसलिए कि यहाँ उस युद्ध की स्मृति सबसे स्पष्ट होती थी — जैसे उस महाकाव्य की गूँज अभी भी इन पत्थरों में बंद हो। जैसे यदि ध्यान से सुनो तो उस कलम की आवाज़ आए जो हज़ारों साल पहले यहाँ चली थी।

वह गूँज जिसमें वह भी था।

परशुराम ने अग्नि जलाई। देवदार की कुछ सूखी टहनियाँ — लेकिन वह अग्नि जली जैसे घृत-दीप जलता है। स्थिर। पवित्र।

दोनों बैठे।

उस दीपक की रोशनी में — गुफा की दीवार पर — दोनों की परछाइयाँ थीं। एक लंबी। एक और लंबी। दोनों के बीच कुछ था जो परछाइयाँ नहीं बता सकतीं।

"कर्ण को तुमने देखा था?" परशुराम ने पूछा।

अश्वत्थामा ने तुरंत उत्तर नहीं दिया। उसने अग्नि को देखा — उस लपट को जो हवा के बिना भी काँपती है।

"हाँ।" वह बोला अंततः। "वह उस युद्ध का सबसे जटिल योद्धा था।"

"जटिल?"

"जटिल — क्योंकि उसमें विरोधाभास था जो सुलझता नहीं था। सूर्यपुत्र था — लेकिन जन्म लेते ही नदी में छोड़ दिया गया। कुंती का पुत्र था — लेकिन कभी माँ नहीं मिली। महावीर था — लेकिन जिस पक्ष में लड़ा वह अधर्म का पक्ष था। दानवीर था — और उसी दान ने उसे मृत्यु दी।"

परशुराम ने सुना। अग्नि में एक चटकन।

"और फिर भी वह लड़ा।" अश्वत्थामा ने जारी रखा। आवाज़ में कुछ था जो सामान्य रूप से नहीं होता था — एक भार, एक आदर। "कवच-कुंडल के बिना — उस सुरक्षा के बिना जो उसे जन्म से मिली थी, जो उसकी देह का भाग थी — वह लड़ा। आखिरी दिन तक। जिस दिन उसका रथ-चक्र धँस गया, जब वह निहत्था था, जब अर्जुन के सामने वह असहाय था — उस दिन भी उसने अपना धर्म नहीं छोड़ा।"

अग्नि की एक लकड़ी चटकी।

"और मैं उस पक्ष में था जिसने उसे उस क्षण मारा।"

वह वाक्य — जो उसने बहुत सोचकर नहीं कहा था, जो बस निकल गया था — वह उस रात उस गुफा के पत्थरों में समा गया।

चुप्पी।

परशुराम ने अग्नि को देखा। फिर उसे।

"दुर्योधन तुम्हारा मित्र था।" उन्होंने कहा। "उसके साथ खड़े रहना — वह गलत नहीं था।"

"वह गलत नहीं था।" अश्वत्थामा ने कहा। "लेकिन जो उस रात हुआ — उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र — वह गलत था। इतना गलत था कि भगवान ने स्वयं मुझे शाप दिया।" एक पल। "और भगवान ने कभी गलत शाप नहीं दिया।"

परशुराम ने उसे देखा।

"और इसीलिए तुम यहाँ हो।" वह धीरे बोले।

"यह प्रायश्चित नहीं है।" अश्वत्थामा ने कहा — और उसकी आवाज़ में एक दृढ़ता थी जो किसी को मनाने के लिए नहीं थी, बल्कि खुद को याद दिलाने के लिए थी। "प्रायश्चित इतना सरल नहीं होता कि एक काम करो और खाता साफ हो जाए। लेकिन यह — यह सही है। जो मेरे कारण कमज़ोर हुआ — उसे बचाना।"

ऊपर आकाश में तारे थे।

नीलकंठ की चोटी — अँधेरे में — उसी तरह खड़ी थी जैसे हमेशा से खड़ी थी। चुप। अटल।

— ✦ —

चार

सूर्योदय से पहले

रात के उस अंतिम प्रहर में जब आकाश पूर्व में धीरे-धीरे नीला होने लगता है — एक ऐसा नीला जो रात का नहीं, दिन का भी नहीं, बल्कि दोनों के बीच का है — दोनों ने योजना बनाई।

योजना सरल थी। कठिन भी।

गुफा तक पहुँचने का एक ही मार्ग था — सरस्वती की धारा को रोकना। क्षण भर के लिए। उतने समय के लिए जितने में गुफा का द्वार खुले और भीतर जाया जा सके। लेकिन जिस क्षण धारा रुकेगी — राक्षस ताल की शक्तियाँ जो प्रतीक्षा में थीं, जो उस resonance को सूँघ रही थीं — वे जान जाएँगी।

"एक भीतर, एक बाहर।" परशुराम ने कहा।

"हाँ।"

"बाहर जो रहेगा — वह अकेला होगा। जब तक भीतर वाला न आए।"

परशुराम ने उसे देखा।

"तुम भीतर जाओगे।"

"मैं।" अश्वत्थामा ने पुष्टि की। "क्योंकि उस गुफा में जो ऊर्जा है — उसका एक भाग मेरा है। मैं उसे पहचानता हूँ। वह मुझे पहचानती है। मेरे लिए भीतर जाना — किसी और के लिए जितना कठिन होगा उतना कठिन नहीं होगा।"

"और बाहर?"

"बाहर तुम हो।" अश्वत्थामा ने कहा। उसकी आवाज़ में वह सरलता थी जो बड़े सत्यों में होती है। "रसातल की शक्तियों का सामना — यह किसी और के बस का काम नहीं।"

परशुराम के होंठों पर एक क्षणिक भाव आया — शायद मुस्कान, शायद उससे भी कुछ सूक्ष्म।

"ठीक है।" उन्होंने कहा।

— ✦ —

पाँच

उसी सुबह

सूरज माणा में एकाएक आता है।

पहाड़ों के पीछे से — जैसे किसी ने एक विशाल दीपक जला दिया हो। पहले नीलकंठ की चोटी पर वह सोना उतरता है। फिर ढलानों पर। फिर घाटी में। फिर नदी पर — और सरस्वती एक पल के लिए सोने की हो जाती है।

उस सुबह माणा जागा।

धुएँ की गंध। एक मंदिर में घंटी। एक बच्चे के रोने की आवाज़ जो थोड़ी देर में बंद हो गई। वह साधारण जागरण जो हर सुबह होता है।

फिर स्कूल की वर्दी में बच्चे निकले।

उनमें से कुछ ने उन दोनों को देखा — दो अजनबी जो नदी के पास थे, सुबह की ठंड में। तीर्थयात्री होंगे — बच्चों ने सोचा — और आगे बढ़ गए।

लेकिन एक बच्ची रुकी।

गोल चेहरा। नीली वर्दी। कंधे पर बस्ता जो उसके आकार के लिए थोड़ा बड़ा था।

वह परशुराम के पास गई।

"बाबाजी, तीर्थ के लिए आए हो?"

"हाँ, बेटा।"

"बदरीनाथ जाओगे?"

"देखते हैं।"

बच्ची ने उसका उत्तर माना और अश्वत्थामा की ओर देखा। उसके माथे पर वह कपड़ा था जो उस घाव को छिपाता था।

"काका को चोट लगी है?"

अश्वत्थामा ने उसे देखा।

इस सुबह में — इस पहाड़ की ताज़ी हवा में — वह बच्ची एक ऐसी सामान्यता थी जो असामान्य लगती थी। इतनी निश्चिंत। इतनी अनजान। उसे नहीं पता था कि उसके गाँव के ठीक नीचे क्या है। उसे नहीं पता था कि अगली कुछ रातें क्या लेकर आएँगी।

"पुरानी चोट है।" अश्वत्थामा ने कहा। "बहुत पुरानी।"

बच्ची ने एक पल सोचा — उस गंभीरता से जो बच्चों में होती है जब वे बड़ों की बात पर विचार करते हैं।

"अम्मा कहती है — पुरानी चोट के लिए हल्दी लगाते हैं।"

और वह चली गई। अपने साथियों के पास। अपने स्कूल की ओर।

अश्वत्थामा उसे जाते देखता रहा। उस नीली वर्दी को — जो भीड़ में मिल गई।

पाँच हज़ार साल में उसने कितनी पीढ़ियाँ देखी थीं। कितने बच्चे जन्मे थे और बूढ़े हुए थे और गए थे। लेकिन यह — यह बेखबरी — यह हर पीढ़ी में एक जैसी थी। यह साधारण जीवन जो नहीं जानता था कि उसके नीचे क्या सोया है, उसके पास क्या खड़ा है।

और इसी साधारणपन को — इसी बेखबरी को — बचाए रखना था।

यही काम था।

"आज रात।" उसने कहा।

"आज रात।" परशुराम ने दोहराया।

सरस्वती बहती रही।

✦ ✦ ✦

अध्याय दो
धारा रुकती है

एक

सरस्वती के तट पर — रात का पहला प्रहर

रात के पहले प्रहर में माणा सो जाता है।

यह कोई परंपरा नहीं है — यह उस भूमि की प्रकृति है। जब पहाड़ों के पीछे सूरज उतर जाता है और ठंड उतरती है — एक ऐसी ठंड जो केवल देह को नहीं, समय को भी धीमा करती है — तो माणा अपने भीतर सिमट जाता है। दरवाज़े बंद होते हैं। चूल्हे ठंडे पड़ते हैं। और वह गाँव — जो दिन में तीर्थयात्रियों के क़दमों से जीवित रहता है — रात में एक ऐसी नींद में उतर जाता है जो पहाड़ों की नींद जैसी होती है।

उस रात — जैसे-जैसे अँधेरा गहरा होता गया — माणा के कुत्ते भी एक-एक करके चुप हो गए।

बिना किसी कारण के।

जैसे उन्होंने हवा में कुछ सूँघा हो और समझ गए हों — आज भौंकने का समय नहीं।

परशुराम और अश्वत्थामा उस बिंदु पर पहुँचे जहाँ सरस्वती पृथ्वी में उतरती थी।

चट्टान के पास।

अश्वत्थामा ने उस आभा को देखा — जो तीन दिनों में धीरे-धीरे गहरी हुई थी और आज रात वह अपने सबसे गहरे रूप में थी। रक्त-वर्णी प्रकाश जल की सतह पर थिरकता था — जैसे जल में नहीं, जल के नीचे कोई श्वास ले रहा हो।

"वे जाग रही हैं।" उसने कहा।

"हाँ।" परशुराम ने कहा। और फिर — एक पल की चुप्पी के बाद — "यह अच्छा है।"

अश्वत्थामा ने उन्हें देखा।

"अच्छा?"

"जो हमें देख रहा हो — उसे पता नहीं कि हम क्या करने वाले हैं।" परशुराम ने कहा। उनकी आवाज़ में वह शांति थी जो भय के अभाव से नहीं, बल्कि बहुत अधिक युद्ध देखने से आती है। "वे हमें महसूस कर रही हैं। उस कवच को नहीं — हमें। तो उनका ध्यान हम पर है। और जब शत्रु का ध्यान तुम पर हो — तो तुम जो करने वाले हो वह उसे दिखता नहीं।"

अश्वत्थामा ने उन्हें एक पल देखा।

"तुम हमेशा ऐसे ही थे? युद्ध में भी?"

परशुराम के होंठों पर कुछ आया — मुस्कान नहीं, उससे भी सूक्ष्म कुछ।

"मैंने बहुत युद्ध लड़े हैं।" उन्होंने कहा। "उनमें से अधिकांश में शक्ति दोनों ओर थी। जो जीता — वह इसलिए नहीं जीता कि शक्ति अधिक थी। इसलिए जीता कि उसने पहले सोचा था।"

परशुराम नदी के पास बैठ गए।

पद्मासन।

और आँखें बंद कीं।

— ✦ —

दो

सरस्वती का निवेदन

वह मंत्र जो परशुराम जानते थे — वह किसी युद्ध का नहीं था।

वह एक निवेदन था।

सरस्वती को रोकने के लिए बल नहीं लगाया जाता। सरस्वती ज्ञान की देवी है — और ज्ञान हमेशा विनम्रता से माँगा जाता है, कभी छीना नहीं जाता। उस मंत्र में यही था — एक याचना, एक प्रार्थना, वह भाषा जो देवताओं से नहीं, एक पुत्र की अपनी माँ से होती है।

परशुराम के होंठ हिले।

धीरे। जैसे शब्द बाहर नहीं आ रहे हों — जैसे शब्द पहले जल में उतर रहे हों, और तब बाहर सुनाई दे रहे हों।

सरस्वति महाभागे विद्ये कमललोचने। विश्वरूपे विशालाक्षि विद्यां देहि नमोऽस्तु ते।।

क्षणमात्रं स्थिरा भव देवि, मार्गं मुक्त कुरु। यत् गुप्तं तव गर्भे च, तस्य रक्षार्थमागताः।।

वह मंत्र जल में उतरा।

जैसे एक पत्थर उतरता है — लेकिन बिना आवाज़ के। बिना छींटे के। केवल वह गहराई जो दिखती नहीं लेकिन होती है।

सरस्वती ने सुना।

नदी का स्वर बदला।

वह कलकल — जो तीन दिनों से अश्वत्थामा के कानों में थी, जो इतनी परिचित हो गई थी कि वह उसे सुनता नहीं था — एक पल के लिए और गहरी हुई। और फिर धीमी। और फिर और धीमी।

और तब — वह बंद हो गई।

सन्नाटा।

वह सन्नाटा जो केवल कानों का नहीं था। वह भीतर तक था —— जैसे पृथ्वी ने साँस रोक ली हो। जैसे उस क्षण में समय भी एक पल के लिए ठहर गया हो।

अश्वत्थामा को उस चुप्पी का एहसास ऐसे हुआ जैसे किसी परिचित आवाज़ का अचानक चले जाना होता है। वह कलकल —— जो तीन दिन से थी —— उसकी अनुपस्थिति एक रिक्तता थी।

चट्टान में एक दरार।

जहाँ जल था —— वहाँ एक द्वार था।

उस द्वार से आ रही थी —— एक सुगंध।

सूर्य की सुगंध।

अश्वत्थामा ने साँस ली —— लंबी, गहरी। वह सुगंध उसने पहले कभी नहीं महसूस की थी —— और फिर भी, उसी क्षण, उसने उसे पहचाना। जैसे कुछ होता है जो स्मृति में नहीं होता लेकिन आत्मा में होता है —— जो शरीर से पहले जानता है।

माथे का घाव जल उठा।

तीखा। अचानक।

— ✦ —

तीन

रसातल की वाणी

वह आवाज़ सब दिशाओं से एक साथ आई।

इसलिए नहीं कि वह अनेक दिशाओं में थी —— बल्कि इसलिए कि वह उस स्थान में थी। उस हवा में, उस रात में, उन पत्थरों में। जैसे किसी ने उस रात को अपनी भाषा दी हो।

"भार्गव।"

परशुराम उठ खड़े हुए। फरसा हाथ में।

"कौन है?"

"हम रसातल हैं — वह अंधकार जो सृष्टि के आरंभ से है।"

परशुराम ने उस आवाज़ को सुना। उन्होंने उसे तौला — जैसे योद्धा शत्रु की चाल को तौलता है।

"रसातल बोलता नहीं।" उन्होंने शांत स्वर में कहा। "रसातल केवल खाता है। तुम रसातल नहीं हो — तुम उसकी छाया हो। और छाया तब होती है जब प्रकाश हो।"

एक पल की चुप्पी।

जैसे उस आवाज़ ने यह उत्तर नहीं सोचा था।

"चतुर है, भार्गव।"

"चतुर नहीं।" परशुराम ने कहा। "पुराना।"

"इक्कीस बार पृथ्वी को मुक्त कराया।"

"हाँ। और उन इक्कीस बार में तुम जैसे भी थे।" परशुराम ने कहा। "वे भी गए।"

एक लंबी चुप्पी।

और तब — वह आवाज़ अश्वत्थामा की ओर मुड़ी।

"द्रोणपुत्र।"

अश्वत्थामा ने उस आवाज़ को सुना। उसमें कुछ था जो उसका नाम लेते समय एक खिंचाव पैदा करता था — जैसे उस नाम में एक धागा हो जो उसे उस आवाज़ की दिशा में खींचे।

उसने उस खिंचाव को पहचाना।

और अनदेखा किया।

"जो भीतर जाएगा — वापस नहीं आएगा।"

"तुम झूठ बोल रहे हो।" अश्वत्थामा ने कहा। उसकी आवाज़ में न भय था, न क्रोध। केवल वह स्पष्टता थी जो तब आती है जब कोई किसी चाल को पहचान ले। "तुम्हारी वाणी यहाँ है। तुम नहीं। तुम पूरी शक्ति से अभी नहीं आए हो — अभी नहीं आ सकते। हमारे पास समय है।"

परशुराम ने फरसे को कंधे से उतारा।

"बहुत बोलते हो।" उन्होंने कहा। और उनकी आवाज़ में वह उदासी थी जो किसी ऐसे की होती है जिसने यह सब पहले देखा हो — और जो जानता हो कि इसके बाद क्या आता है।

— ✦ —

चार

गुफा के द्वार पर

गुफा के द्वार पर दोनों ने एक-दूसरे को देखा।

वह देखना जो शब्दों की जगह होता है — जो तब होता है जब कहने को बहुत कुछ हो और समय न हो।

"यदि मैं भीतर से न—"

"आओगे।" परशुराम ने बीच में कहा।

"लेकिन यदि—"

"अश्वत्थामा।"

वह नाम — उस तरह, उस क्षण — उसे चुप कर गया।

परशुराम ने उसे देखा। वह दृष्टि जो न आश्वासन देती है, न अनदेखा करती — जो केवल देखती है।

"तुम पाँच हज़ार साल से जीवित हो। आज नहीं मरोगे।"

एक पल।

"ठीक है।" अश्वत्थामा ने कहा।

और उस दरार में उतरा।

अँधेरे ने उसे ढक लिया — धीरे-धीरे, जैसे जल किसी को ढकता है।

परशुराम उस द्वार के बाहर खड़े हो गए।

उन्होंने आकाश की ओर देखा — उस आकाश की ओर जिसमें तारे थे, हज़ारों तारे, जो उस रात बहुत पास लग रहे थे। उनमें एक तारा था — वह जो हमेशा उसी स्थान पर रहता है, जो घूमता नहीं, जो बदलता नहीं।

ध्रुव।

परशुराम ने उसे देखा।

और उसमें वह बात ढूँढी जो वे हर युद्ध से पहले ढूँढते थे — वह स्थिरता जो बाहर नहीं, भीतर होती है। लेकिन कभी-कभी उसे ढूँढने के लिए बाहर देखना पड़ता है।

उन्होंने फरसे को कस के पकड़ा।

और प्रतीक्षा करने लगे।

— ✦ —

पाँच

गुफा के भीतर

हज़ारों साल का अँधेरा।

लेकिन अँधेरा पूरा नहीं था।

दूर — बहुत दूर, इतनी दूर कि आँखें धोखा खाएँ — एक सुनहरी आभा थी। इतनी धीमी कि यदि ध्यान न हो तो दिखे न। लेकिन वहाँ थी।

अश्वत्थामा चला।

गुफा के पत्थर गीले थे। सरस्वती —— जो अभी रुकी थी, जो अभी उस द्वार को खोलने के लिए ठहरी थी —— उसका स्पर्श इन पत्थरों में था। उस नमी में। उस ठंड में जो पाँवों से उठती थी और रीढ़ तक जाती थी।

लेकिन उस ठंड में —— वह उष्मा भी थी। दूर से आती हुई। उस सुनहरी आभा से।

अश्वत्थामा चला।

और स्मृतियाँ आईं।

वे हमेशा तब आती हैं जब अँधेरा हो और एकांत हो —— जैसे अँधेरा उन्हें रोके रखता हो, और जब बाहर का प्रकाश न हो तो वे निकल आती हों।

पहली स्मृति —— पिता का चेहरा।

आचार्य द्रोण। वह माथे की लकीरें जो बचपन से जानी थीं। वह गंभीरता जिसके पीछे एक प्रेम था जो कभी कहा नहीं गया —— क्योंकि वे ऐसे लोग थे जो प्रेम कहते नहीं, करते हैं। वह अंतिम दृश्य —— जब वे कुरुक्षेत्र में थे और फिर नहीं रहे।

अश्वत्थामा ने उस स्मृति को देखा।

उसे दूर नहीं धकेला। उसे देखा —— जैसे कोई किसी पुराने घाव को देखता है। और फिर आगे बढ़ा।

दूसरी स्मृति कठिन थी।

कुरुक्षेत्र की वह रात। वह अँधेरा जिसमें उसने वह किया था जो नहीं करना था। वह क्षण जिसके लिए भगवान ने उसे शाप दिया था।

अश्वत्थामा रुक गया।

उस अँधेरे में —— एक पल के लिए —— वह पुरानी आवाज़ आई। तुम्हें यह करने का अधिकार नहीं। जो तुमने किया उसके बाद —— कोई भी अच्छाई संभव नहीं।

और तब —— परशुराम के शब्द याद आए।

'एक गलत था — वह गलत था। एक सही है — वह सही है। दोनों सच एक साथ हैं।'

अश्वत्थामा ने साँस ली।

और चला।

उस सुनहरी आभा की ओर।

एक कक्ष में — जहाँ गुफा खुलती थी, जहाँ पत्थरों के बीच एक शिला थी — वह कवच था।

जीवित।

पाँच हज़ार साल। उतने ही वर्ष जितने उसके शाप के — और वह कवच वैसा ही था जैसा उस दिन था जब इंद्र ने उसे माँगा था और कर्ण ने दे दिया था।

उस धातु में एक उपस्थिति थी।

जैसे वह सो रही हो — लेकिन सोई हुई भी जागती हो।

अश्वत्थामा ने उसे छुआ।

और एक क्षण — केवल एक क्षण — उसे लगा कि वह स्थान रिक्त नहीं है। कि उस अँधेरे में — उस सुनहरी आभा में — कर्ण की उपस्थिति है। वह व्यक्ति जिसने मुस्कुराते हुए यह दिया था। जो जानता था कि दे रहा है। जो जानता था कि इस देने के बाद क्या होगा।

वह उपस्थिति — जो न थी, और फिर भी थी — उसने एक बात कही।

शब्दों में नहीं। उस भाषा में जिसे शरीर समझता है, जिसे आत्मा समझती है।

तुम सही जगह आए।

अश्वत्थामा ने कवच-कुंडल उठाया।

और वापस मुड़ा।

— ✦ —

छः

भोर से ठीक पहले

वह बाहर आया।

परशुराम वहीं थे — बिल्कुल वहीं जहाँ उसने उन्हें छोड़ा था। उनके वस्त्र पर एक स्थान पर वह हल्का निशान था जो रसातल की शक्तियाँ छोड़ती हैं — न घाव, न दाग, लेकिन एक ऐसी जलन जो कुछ देर रहती है।

"कुछ हुआ?" अश्वत्थामा ने पूछा।

"चार।" परशुराम ने कहा। संक्षेप में, जैसे वे हमेशा कहते हैं। "लेकिन पूरी शक्ति से नहीं। परख थी।"

"कल की रात?"

"कल की रात असली होगी।"

दोनों ने उस पोटली को देखा — जिसमें कवच-कुंडल था। उस सुनहरी आभा के साथ जो अब पहले से अधिक स्पष्ट थी, जैसे इस भूमि पर आकर वह जागी हो।

परशुराम ने उसे देखा।

और एक पल के लिए उनके चेहरे पर वह भाव आया जो वे कम दिखाते हैं।

"कर्ण।" उन्होंने कहा। उस नाम को ऐसे लिया जैसे कोई पुरानी बात याद हो।

"तुमने उसे जाना था?"

"देखा था।" परशुराम ने कहा। "युद्ध से पहले। वह पाण्डवों के शिविर में नहीं था। दूर खड़ा था — अपने रथ के पास, अकेला। उस भीड़ में — जहाँ हर कोई किसी न किसी के साथ था — वह अकेला था।"

"क्या था उसमें?"

परशुराम ने एक पल सोचा।

"एकांत।" उन्होंने कहा। "वह जानता था कि वह अकेला है — अपने पक्ष में भी, दुनिया में भी। और उस एकांत में — वह झुका नहीं। वह वैसा ही खड़ा था जैसा हमेशा खड़ा रहा था।"

अश्वत्थामा ने यह सुना।

उस पोटली को उसने और कस के पकड़ा।

वह व्यक्ति जो एकांत में भी नहीं झुका।

"चलो।" उसने कहा। "आराम। कल की रात के लिए।"

सरस्वती — जो रुकी थी — फिर बहने लगी।

उस चट्टान के नीचे से। पृथ्वी के भीतर। उस गुफा की ओर जो अब खाली थी।

और पूर्व में — आकाश में — भोर की वह पहली रेखा आने वाली थी।

✦ ✦ ✦

अध्याय तीन
अमावस्या की रात

एक

माणा गाँव — अगला दिन

वह दिन बड़ा लंबा था।

जब रात लंबी होने वाली हो — तो दिन हमेशा ऐसा होता है। जैसे समय को पता हो कि आगे क्या है और इसीलिए वह हर पल को खींचता हो। घड़ी चलती है — लेकिन शाम नहीं आती।

अश्वत्थामा उस दिन गाँव में रहा।

वह बाहर जाना चाहता था — उन पहाड़ों में जहाँ कोई नहीं हो, जहाँ केवल पत्थर और आकाश हों। वह एकांत जो उसे परिचित था, जिसमें वह हज़ारों साल से रहा था। लेकिन आज कवच-कुंडल उसके साथ था — और उसे उससे दूर नहीं करना था।

तो वह गाँव में रहा।

माणा के बाज़ार में — जो बाज़ार कम, एक गली अधिक था — कुछ दुकानें थीं। ऊनी कपड़े, देवदार की लकड़ी से बनी चीज़ें, तीर्थयात्रियों के लिए पूजा का सामान। अश्वत्थामा उस गली में एक ओर बैठ गया — उस जगह जहाँ धूप आती थी, जहाँ थोड़ी गर्मी थी।

एक दुकानदार थे — बुज़ुर्ग, ऊनी शॉलें बेचते हुए। उन्होंने अश्वत्थामा को देखा। एक बार। फिर दूसरी बार।

"बाबाजी कहाँ से आए?"

"दूर से।"

"तीर्थ के लिए?"

"हाँ।"

दुकानदार ने उसे देखते रहे — उसके माथे पर वह कपड़ा, उसकी आँखें जो शरीर से बहुत पुरानी थीं। पहाड़ के लोग ऐसी आँखें पहचानते हैं। वे बहुत प्रश्न नहीं करते।

"बहुत समय से चल रहे हो?" उन्होंने पूछा।

अश्वत्थामा ने एक पल सोचा।

"बहुत लंबे समय से।"

दुकानदार ने एक शॉल उठाई — नीली, मोटी, उस ऊन से बनी जो हिमालय की ठंड के लिए होती है।

"ठंड बहुत है। रात को और बढ़ेगी।" उन्होंने कहा। और वह शॉल उसकी ओर बढ़ा दी।

अश्वत्थामा ने उसे देखा।

वह शॉल — जो इतनी साधारण थी, जो एक साधारण मनुष्य ने एक अजनबी को दी थी — उसमें कुछ था जो असाधारण था। वह सहजता जिसके साथ दी गई थी। वह सोच जिसके बिना दी गई थी।

उसने वह शॉल ली।

"कितने में?"

"तीर्थयात्री से पैसे नहीं लेते।" दुकानदार ने कहा। और अपनी दुकान की ओर मुड़ गए — जैसे उन्होंने कुछ विशेष नहीं किया हो। जैसे यह उनकी आदत हो, उनका स्वभाव हो।

अश्वत्थामा उस शॉल को देखता रहा।

उसे कर्ण की याद आई — वह भी ऐसे ही देता था। बिना सोचे। बिना गिने। जो माँगे उसे — और कभी-कभी जो न माँगे उसे भी।

कुछ लोग ऐसे होते हैं। उनका दान उनकी साँस जैसा होता है — स्वाभाविक, बिना प्रयास के।

— ✦ —

दो

दोपहर — माणा गाँव

दोपहर में वह स्त्री आई।

अश्वत्थामा ने उसे पहले देखा — परशुराम से पहले। उसने देखा कि वह किस तरह चलती है — उस चाल से जो बुज़ुर्गी की नहीं थी, जो थकान की नहीं थी। वह चाल जो उन लोगों की होती है जो बहुत लंबे समय से हैं — जिनके पाँव पृथ्वी को उसी तरह जानते हों जैसे पृथ्वी उन्हें।

वह सीधे परशुराम के पास आई। जैसे जानती हो वे कहाँ हैं।

रुकी। उसने परशुराम को देखा। अश्वत्थामा को देखा। और उस पोटली को देखा जो अश्वत्थामा की बाँह के नीचे थी।

उसके चेहरे पर एक भाव आया — संतोष का, प्रतीक्षा के पूरे होने का।

"मिल गया।" उसने कहा।

उसकी हिंदी थोड़ी पुरानी थी — जैसे बहुत दिनों बाद बोली जा रही हो।

"तुम कौन हो?" परशुराम ने पूछा।

"माणा की हूँ।" उसने कहा। "इस गाँव में बहुत पुरानी हूँ।" एक पल रुकी। "जितनी पुरानी — यह तुम दोनों ही समझ सकते हो।"

वह व्यास गुफा के सामने बैठ गई — ज़मीन पर, बिना किसी संकोच के, जैसे यह स्थान उसका अपना हो।

और उसने बताना शुरू किया।

राक्षस ताल के बारे में — वह बात जो परशुराम और अश्वत्थामा नहीं जानते थे। जब रावण ने उस झील के किनारे तपस्या की थी — शिव को प्रसन्न करने के लिए — तब उसने उस मिट्टी में एक बंधन-मंत्र बोया था। वह मंत्र जो रसातल की शक्तियों को उसके नियंत्रण में रखता था — जो उन्हें बुलाता था लेकिन उन्हें असीमित नहीं छोड़ता था।

रावण गया। लेकिन मंत्र रहा।

वर्षों में क्षीण होता रहा — लेकिन रहा।

और अब — आज रात — वह टूट जाएगा।

"लेकिन उसे फिर जगाया जा सकता है।" उसने कहा।

"कैसे?" परशुराम ने पूछा।

"रावण का मंत्र उस मिट्टी में सोया है। उसे जागने के लिए एक ऊर्जा चाहिए जो उससे मेल खाती हो।" उसने उस पोटली की ओर देखा। "सूर्य का तेज।"

एक पल की चुप्पी।

वह मंत्र उसने सुनाया — उस भाषा में जो संस्कृत से भी पुरानी लगती थी, जिसमें एक भार था जो शब्दों में नहीं, उनके नीचे था।

रविस्तेजो रसातलं बध्नाति पुनरेव च। रावणस्य प्रतिज्ञा च पुनर्जागर्तु संयमे।। इदं कवचमिदं कुण्डलं सूर्यतेजसा युतम्। बन्धनं पुनरावर्तय रसातलस्य शक्तिषु।।

शब्द हवा में रहे — कुछ देर। जैसे वे जाना नहीं चाहते थे।

फिर वह अश्वत्थामा की ओर मुड़ी।

"यह तुम्हें करना होगा।"

"क्यों?"

"क्योंकि उस कवच-कुंडल में तुम्हारी भी ऊर्जा है। वह ब्रह्मास्त्र की शक्ति जो तुमने छोड़ी थी — वह उस धातु को पहचानती है, वह धातु उसे पहचानती है। यह resonance — परशुराम के पास नहीं है।"

अश्वत्थामा चुप रहा।

वह स्त्री उठी। उसने अपने वस्त्र के नीचे से वह पोटली निकाली — काली मिट्टी से भरी। उसे परशुराम को दिया।

"मैं सदियों से यहाँ हूँ।" उसने कहा। "इसीलिए।"

और वह चली गई।

अश्वत्थामा ने उसे जाते देखा।

"उसका नाम?" उसने परशुराम से पूछा।

परशुराम ने उस दिशा को देखा जहाँ वह गई थी।

"नदियों के नाम नहीं होते।" उन्होंने कहा। "वे स्वयं नाम हैं।"

— ✦ —

तीन

सूर्यास्त का वह क्षण

सूरज माणा में धीरे नहीं डूबता।

यहाँ पहाड़ हैं — और पहाड़ों में सूरज एक पल दिखता है और दूसरे पल नहीं होता। वह सन्धिकाल जो मैदानों में लंबा होता है — यहाँ एक साँस जितना छोटा है।

एक पल आकाश नारंगी था।

फिर बैंगनी।

फिर — अँधेरा।

उस अंतिम नारंगी क्षण में अश्वत्थामा ने वह मंत्र फिर दोहराया — मन में, उन शब्दों को। वे उसे याद हो गए थे। वह भाषा — जो पुरानी थी — उसे अजनबी नहीं थी। वह उसी युग की थी जिस युग का वह था।

परशुराम उसके पास खड़े थे।

"डर?" उन्होंने पूछा।

अश्वत्थामा ने सोचा — सच में सोचा।

"नहीं।" उसने कहा। "पाँच हज़ार साल में डर के लिए जगह नहीं बची। या शायद डर इतना पुराना हो गया कि अब उसे डर नहीं कहते।"

"मैं डरता हूँ।" परशुराम ने कहा।

सीधे। बिना किसी संकोच के।

अश्वत्थामा ने उन्हें देखा।

"तुम?"

"हाँ।" परशुराम ने कहा। "लेकिन डर और अकर्मण्यता एक नहीं होते। डर बताता है कि सामने क्या है — यह उसकी उपयोगिता है। अकर्मण्यता कहती है इसीलिए मत जाओ — यह उसका जाल है। मैं डर को सुनता हूँ। अकर्मण्यता को नहीं।"

उत्तर से एक हवा आई।

ठंडी। भारी। उस गंध के साथ जिसे अश्वत्थामा अब पहचानता था — वह गंध जो राक्षस ताल की थी, जो बंद जगह की थी, जो उस अंधकार की थी जो सोया था और अब जागा था।

दोनों ने उस दिशा को देखा।

वे आ रही थीं।

— ✦ —

चार

अमावस्या की रात — मध्यरात्रि

वे आईं।

लेकिन जैसे तूफान आता है — वैसे नहीं। तूफान आता है तो आवाज़ होती है, हलचल होती है। यह चुपचाप आया।

पहले वह ठंड — जो हड्डियों में नहीं, उससे गहरे कहीं उतरती है। वह ठंड जिसका कोई स्रोत नहीं था — हवा नहीं थी, लेकिन ठंड थी।

फिर देवदार झुके। बिना हवा के।

और तब — वह रक्त-वर्णी प्रकाश। उत्तर से। धीरे-धीरे फैलता हुआ — जैसे कोई पर्दा खिंच रहा हो।

परशुराम उठ खड़े हुए।

फरसा हाथ में — वह धातु जो शिव की थी, जो उस रात उस अँधेरे में चमकी।

अश्वत्थामा ने पोटली खोली। एक हाथ में कवच-कुंडल — उस सुनहरी आभा के साथ जो उस रक्त-वर्णी प्रकाश के सामने एक दीपक जैसी थी। दूसरे हाथ में वह काली मिट्टी की पोटली।

वे आईं।

आकार नहीं था — या था, लेकिन वह रुकता नहीं था। रक्त-वर्णी धुआँ जो बनता था, बिगड़ता था, फिर बनता था। लेकिन उसमें एक चेतना थी — वह भूख जो हज़ारों साल से सोई थी और अब जागी थी।

"भार्गव।"

परशुराम ने फरसा उठाया।

"आ गए।" उनकी आवाज़ में कोई उत्तेजना नहीं थी। केवल वह तैयारी थी जो बहुत पुरानी हो।

और वे टूट पड़ीं।

परशुराम ने पहला वार किया — फरसा उस रक्त-वर्णी लहर में गया और वह लहर टूटी। लेकिन एक लहर टूटती तो दूसरी आती। वे अनेक थीं। वे उस रात्रि जितनी असीमित थीं।

अश्वत्थामा ने मंत्र शुरू किया।

रविस्तेजो रसातलं बध्नाति पुनरेव च।

उसी क्षण — वे शक्तियाँ जो परशुराम पर थीं — उनका एक भाग मुड़ा। उसकी ओर। उस ऊर्जा की ओर जिसे वे पहचानती थीं।

"द्रोणपुत्र — रुको।"

अश्वत्थामा ने नहीं रुका।

रावणस्य प्रतिज्ञा च पुनर्जागर्तु संयमे।।

वे उस पर टूट पड़ीं — वह ठंड, वह भार, वह दबाव। माथे का घाव भड़क उठा — तीखा, अचानक। उसके हाथ काँपे।

इदं कवचमिदं कुण्डलं सूर्यतेजसा युतम्।

उसने वह काली मिट्टी निकाली और कवच की धातु पर रगड़ी।

जो हुआ — वह एकाएक था।

वह सुनहरी आभा — जो कवच-कुंडल में थी, जो इतनी देर से प्रतीक्षारत थी — जागी। जैसे कोई सोया हुआ सूरज जागे। पहले एक लौ। फिर एक ज्वाला।

बन्धनं पुनरावर्तय रसातलस्य शक्तिषु।।

वह बंधन — जो रावण ने बोया था, जो हज़ारों साल में क्षीण हुआ था, जो आज रात टूटने वाला था — उस एक क्षण में, उस सूर्य-तेज और उस मिट्टी के मिलने में, फिर जागा।

रसातल की शक्तियाँ स्थिर हुईं।

जैसे किसी ने उन्हें एक विशाल हाथ से थाम लिया हो।

एक पल।

और वे पीछे हटने लगीं।

— ✦ —

पाँच

वह नाम — जो पाँच हज़ार साल बाद

परशुराम ने उस एक पल का उपयोग किया।

जब वे शक्तियाँ उस बंधन में स्थिर हुईं — उन्होंने वह वार किया जो उन्होंने अपने जीवन में गिनती के बार किया था। वह वार जिसमें इक्कीस युद्धों की साधना थी, जिसमें शिव का दिया हुआ वह धातु था जो रसातल को पहचानता था।

फरसे की धार उस घने, रक्त-वर्णी केंद्र में गई।

और वह केंद्र — फटा।

जैसे एक बड़ा बुलबुला फूटे। वह रक्त-वर्णी प्रकाश सब दिशाओं में बिखरा — और फिर समेटने लगा। वे शक्तियाँ जो चारों ओर थीं — एकाएक एक धागे से खिंचने लगीं। उत्तर की ओर। राक्षस ताल की ओर।

लेकिन जाते-जाते — एक अंतिम वार।

अश्वत्थामा पर।

वह आया — वह भार, वह ठंड, वह दबाव — इतनी तेज़ी से कि वह सँभल नहीं सका। वह पीछे गिरा। पत्थर पर। उसके हाथ में कवच-कुंडल था — उसने जाने नहीं दिया। लेकिन माथे का घाव — उस क्षण — ऐसे जला जैसे किसी ने उस पर अंगार रख दिया हो।

वह लेटा रहा।

आकाश ऊपर था।

परशुराम के क़दमों की आवाज़ आई।

"अश्वत्थामा।"

वह नाम।

पाँच हज़ार साल में — किसी के मुँह से — उसका नाम।

हमेशा 'द्रोणपुत्र' था। हमेशा 'शापित' था। वह नाम — जो उसका था, जो उसकी माँ ने दिया था, जो उसके पिता ने पुकारा था — वह नाम इतने वर्षों में किसी ने नहीं लिया था।

आज — परशुराम ने लिया।

अश्वत्थामा ने आँखें खोलीं।

आकाश — तारों से भरा। और वह रक्त-वर्णी आभा — नहीं थी।

"गई?" उसने पूछा।

"हाँ।" परशुराम ने कहा। वे उसके पास बैठ गए। "लेकिन वे वापस आएँगी।"

"जानता हूँ।"

अश्वत्थामा उठकर बैठा।

उस नाम को उसने भीतर ही भीतर दोहराया — 'अश्वत्थामा।' वह नाम जो उसे लगा था वह खो चुका है। कि वह अब केवल एक शाप था, एक घाव था, एक पाँच हज़ार साल की भटकन थी।

लेकिन उस एक क्षण में — उस एक नाम से — वह फिर कोई था।

वह अश्वत्थामा था।

द्रोण का पुत्र। जिसने गलत भी किया था। जिसने आज कुछ सही भी किया था।

दोनों सच एक साथ।

✦ ✦ ✦

अध्याय चार

तामस का पीछा

एक

माणा से आगे — पहाड़ों में, दूसरे दिन की सुबह

माणा के बाद पहाड़ शुरू होते हैं।

जैसे पृथ्वी ने एक रेखा खींच दी हो — यहाँ तक मनुष्य, उसके आगे केवल पत्थर और आकाश।

वे उस रेखा के पार थे।

परशुराम आगे थे। अश्वत्थामा पीछे। दोनों के बीच दो क़दम की दूरी — वही जो माणा में थी, वही जो पहले दिन से थी। वह दूरी जो न बढ़ी, न घटी।

अश्वत्थामा ने उस दूरी के बारे में सोचा।

दो क़दम। इतना ही। लेकिन उन दो क़दमों में — दो युगों का अंतर था। दो अलग-अलग पापों का अंतर था, दो अलग-अलग अमरताओं का अंतर था। परशुराम की अमरता — जो उन्होंने चुनी थी, जो उनके संकल्प में थी। उसकी अमरता — जो उसे मिली थी दंड के रूप में।

और फिर भी — वे एक ही दिशा में जा रहे थे।

यह बात उसे अजीब लगी। और फिर — अजीब नहीं लगी।

पहाड़ों में सुबह का प्रकाश धीरे-धीरे उतरता है। पहले चोटियों पर। फिर ढलानों पर। फिर नीचे — उस पगडंडी पर जो नहीं थी, उस रास्ते पर जो केवल उनके पाँवों में था।

परशुराम ने बिना पलटे कहा — "वह पीछे आ रहा है।"

अश्वत्थामा ने महसूस किया था यह — कुछ देर से। एक अनुभव जो हज़ारों साल में मिलता है — वह जब कोई अदृश्य चीज़ तुम्हारे पीछे हो और तुम उसे देख न सको लेकिन जान सको।

"मैं जानता हूँ।"

"तामस बल से नहीं आएगा।" परशुराम ने कहा। अभी भी आगे देखते हुए, क़दम बढ़ाते हुए। "रसातल की शक्तियाँ सीधे नहीं लड़तीं — वे वहाँ जाती हैं जहाँ तुम सबसे अकेले हो। तुम्हारी स्मृतियों में।"

"मुझे पता है।"

"यदि पता है — तो रुकना मत। जब वह आए, जब वह जो दिखाए उसे देखो, मानो — और चलते रहो। रुकना ही उसकी जीत है।"

अश्वत्थामा ने यह सुना।

उसने उत्तर नहीं दिया। लेकिन उसके क़दमों में एक दृढ़ता आई — वह दृढ़ता जो शब्दों से नहीं, समझ से आती है।

— ✦ —

दो

पिता की छाया

तामस को धैर्य था।

वह तुरंत नहीं आया। उसने प्रतीक्षा की — उस क्षण की, जब पहाड़ ऊँचे हुए और रास्ता कठिन हुआ और अश्वत्थामा के पाँव भारी हुए। उस क्षण की, जब थकान शरीर में नहीं — मन में उतरती है।

वह तब आया।

एक पत्थर की दीवार थी — जिस पर शाम की आखिरी रोशनी पड़ रही थी। उस रोशनी में एक परछाईं बनी।

आचार्य द्रोण।

अश्वत्थामा रुक गया।

वह चेहरा — जो उसने पूरी ज़िंदगी जाना था। वह माथे पर पड़ी लकीरें जो उसने बचपन से देखी थीं। वह गंभीरता जो पिता की थी — वह गंभीरता जिसके पीछे एक अपरंपार करुणा थी जिसे वे कभी कहते नहीं थे।

उसका गला भर आया।

पाँच हज़ार साल। पाँच हज़ार साल में उसने वह चेहरा नहीं देखा था। न स्वप्न में, न स्मृति में — क्योंकि स्मृति दर्द देती थी और वह दर्द से भागता था।

"पुत्र।"

वह आवाज़।

वह स्वर — जो आदेश जैसा लगता था लेकिन था प्रेम — वह स्वर जो केवल पिता का होता है।

"पुत्र — तुम यहाँ क्यों हो?"

अश्वत्थामा ने उत्तर नहीं दिया।

"तुम्हारा यह काम नहीं। तुमने पहले भी गलत किया — और अब? अब फिर उस राह पर हो जो तुम्हारे लिए नहीं बनी।"

अश्वत्थामा के पाँव वहीं थे।

वह छाया — वह चेहरा — इतना परिचित था। इतना जाना-पहचाना। उसकी आँखें उसे देख रही थीं — वह दृष्टि जो पिता की होती है, जिसमें प्रश्न होता है और उत्तर की प्रतीक्षा भी।

एक पल।

और तब — अश्वत्थामा ने पहचाना।

यह आवाज़ — जो पिता की थी — उसमें कुछ था जो पिता का नहीं था। पिता ने उसे अस्त्र-विद्या दी थी — इसलिए नहीं कि वह रुके। इसलिए कि वह लड़े। पिता ने कभी यह नहीं कहा था कि 'तुम्हारा यह काम नहीं।' पिता ने यह कहा था — 'जो सही हो, वह करो। चाहे कठिन हो।'

यह पिता की आवाज़ नहीं थी।

यह उस आवाज़ की नकल थी — जो इतनी अच्छी थी कि पहचानना कठिन था। लेकिन नकल।

"तुम तामस हो।"

उसकी आवाज़ में कंपन नहीं था।

वह छाया — एक पल के लिए स्थिर रही। और तब बिखर गई। जैसे धुआँ बिखरता है जब हवा चले।

परशुराम की आवाज़ — पास से, वास्तविक।

"चलो।"

अश्वत्थामा चला।

लेकिन उस छाया को देखने के बाद — उसकी चाल में कुछ था जो पहले नहीं था। वह दर्द जो उसने दबाया था — वह थोड़ा बाहर आया था। और दर्द जो बाहर आता है — वह उतना नहीं जलाता जितना वह जो भीतर दबा रहता है।

— ✦ —

तीन

कुरुक्षेत्र की वह रात

तामस को एक बार पहचाने जाने से फ़र्क नहीं पड़ा।

वह जानता था कि उसके पास और भी था।

दूसरी बार वह उत्तरा का रूप लेकर आया।

वह चेहरा — जो अश्वत्थामा ने उस रात देखा था। अभिमन्यु की पत्नी। वह स्त्री जो उस युद्ध में सबसे निर्दोष थी — जिसका उस सबसे कोई संबंध नहीं था — और जिसके गर्भ पर उसने ब्रह्मास्त्र चलाया था।

उस चेहरे को देखकर अश्वत्थामा के पाँव रुक गए।

पिता की छाया को उसने पहचाना था।

लेकिन यह — यह उससे कठिन था।

क्योंकि पिता की स्मृति में दर्द था — लेकिन प्रेम भी था। उत्तरा की स्मृति में केवल अपराधबोध था। वह अपराधबोध जो पाँच हज़ार साल में एक दिन भी हल्का नहीं हुआ था।

"तुमने जानबूझकर किया था।" वह आवाज़ बोली।

अश्वत्थामा ने उसे देखा।

"हाँ।" उसने कहा। आवाज़ में कुछ नहीं छिपाया। "मैंने किया था। गलत किया था।"

"तो तुम जानते हो।" वह आवाज़ आगे बोली — और इस बार उसमें एक मीठापन था, एक सहानुभूति जो असली नहीं थी। "तुम जानते हो कि यह सब — जो तुम आज कर रहे हो — यह उसे नहीं बदलेगा। वह हो गया। और इसीलिए — यह सब व्यर्थ है।"

वह शब्द।

व्यर्थ।

वह शब्द जो एक तीर की तरह था — लेकिन वैसा तीर नहीं जो घाव करे। वैसा तीर जो उस जगह जाए जहाँ पहले से घाव हो। और वहाँ घुम जाए।

अश्वत्थामा के पाँव जम गए।

उसके भीतर — वह आवाज़ जो हमेशा से थी, जो पाँच हज़ार साल से थी — वह बोलने लगी। हाँ। व्यर्थ है। तुमने जो किया उसके बाद कुछ भी सही नहीं हो सकता। कर्ण को तुमने बचाया नहीं — तुम उस पक्ष में थे जिसने उसे मारा। और अब उसका कवच बचाना — यह प्रायश्चित नहीं है। यह केवल एक नाटक है जो तुम खुद को दिखाने के लिए कर रहे हो।

परशुराम ने उसका कंधा पकड़ा।

मज़बूती से। उस पकड़ में कुछ था — एक वास्तविकता, एक ज़मीन — जो उसे उस आवाज़ से वापस खींची।

"सुनो।"

अश्वत्थामा ने उन्हें देखा।

परशुराम ने उत्तरा की उस छाया की ओर नहीं देखा। उन्होंने अश्वत्थामा को देखा।

"मैंने इक्कीस बार पृथ्वी को अत्याचारी क्षत्रियों से मुक्त किया।" उन्होंने कहा। "उसमें धर्म था। लेकिन उसमें अहंकार भी था। एक क्रोध था जो न्यायसंगत था — लेकिन जिसमें कहीं-कहीं वह भी था जो केवल क्रोध था, धर्म नहीं।"

अश्वत्थामा ने यह सुना।

"क्या वह सब व्यर्थ था?" परशुराम ने पूछा।

एक पल की चुप्पी।

"नहीं।" अश्वत्थामा ने कहा।

"तो तुम्हारा यह क्यों व्यर्थ होगा?" परशुराम की आवाज़ में वह शांति थी जो लंबे अनुभव से आती है — वह शांति जो तब नहीं थी, जब वे जवान थे, जब वे इक्कीस बार लड़े थे। "तामस यही करता है। वह तुम्हारे सबसे बड़े पाप को उठाता है — और उससे तुम्हारे पूरे अस्तित्व को नकार देता है। जैसे एक गलत ने बाकी सब को मिटा दिया।"

अश्वत्थामा ने सुना।

"एक गलत था — वह गलत था। एक सही है — वह सही है। दोनों सच एक साथ हैं। दोनों। तामस चाहता है कि तुम केवल एक को देखो।"

वह छाया — जो उत्तरा की थी — उस बातचीत में जैसे धुंधली हो गई। जैसे उसकी शक्ति कम हो गई।

और अश्वत्थामा के भीतर — वह कसाव जो पाँच हज़ार साल से था, जो हर रात उसे जगाए रखता था, जो हर सुबह उसके साथ उठता था — वह एक रेशे जितना ढीला हुआ।

एक रेशा।

लेकिन ढीला हुआ।

— ✦ —

चार

तामस का अंतिम प्रयास

तामस ने तीसरी बार कोई रूप नहीं लिया।

इस बार वह आया — जैसे था। वह आवाज़ जो हवा में थी, जो पत्थरों में थी, जो उस पगडंडी पर थी जो नहीं थी।

"व्यर्थ है।"

केवल यही दो शब्द।

फिर — "व्यर्थ है।"

फिर — "व्यर्थ है।"

जैसे यदि पर्याप्त बार दोहराया जाए तो वह सच हो जाए।

अश्वत्थामा ने उसे सुना। उसने उन शब्दों को अपने भीतर उतरने दिया — एक पल — और फिर उन्हें देखा। जैसे कोई उस पत्थर को देखे जो रास्ते में हो। उसे हटाना ज़रूरी नहीं — बस उसे देखना है, और फिर उसके बगल से गुज़रना है।

"यह केवल तब काम करता है," उसने कहा — और उसकी आवाज़ में वह थकान नहीं थी जो होनी चाहिए थी, "जब मैं उसे मानूँ।"

एक पल।

"आज — नहीं।"

परशुराम का फरसा उठा।

वह वार जो शक्ति से नहीं — स्पष्टता से किया जाता है। जब सामने जो है उसे तुम पूरी तरह देख लो — तब वार करना कठिन नहीं रहता।

तामस बिखरा।

पहाड़ों में वह हवा आई जो तब आती है जब कुछ जाए — वह हल्कापन जो अभाव नहीं, मुक्ति है।

— ✦ —

पाँच

रात्रि — अग्नि के पास

एक पहाड़ी पर — उस रात

रात उन पर उतरी — धीरे, जैसे हिमालय में उतरती है। पहले तारे आते हैं। फिर ठंड। फिर वह सन्नाटा जो शहरों में कभी नहीं होता।

वे एक पहाड़ी पर रुके।

परशुराम ने अग्नि जलाई। उस ऊँचाई पर लकड़ी कम थी — कुछ सूखी जड़ें, एक-दो देवदार की टहनियाँ। लेकिन वह अग्नि जली — और उसकी रोशनी उस रात में जितनी थी, उतनी काफी थी।

दोनों बैठे।

एक लंबी चुप्पी।

वह चुप्पी जो असहज नहीं थी। वह चुप्पी जो दो लोगों के बीच तब होती है जब वे एक-दूसरे को समझने लगें — शब्दों से नहीं, उपस्थिति से।

"परशुराम।"

वह पहली बार था जब अश्वत्थामा ने उन्हें नाम से पुकारा था। 'भार्गव' नहीं, 'आचार्य' नहीं। नाम से।

परशुराम ने उसे देखा।

"क्या तुम थके हो?" अश्वत्थामा ने पूछा। "इन हज़ारों सालों से। इस सब से।"

परशुराम ने अग्नि को देखा।

एक पल।

"हाँ।" उन्होंने कहा।

वह एक शब्द — जो उन्होंने इतनी सरलता से कहा — उसमें कितना था। परशुराम — जिनका नाम सुनकर पृथ्वी के राजा काँपते थे, जिन्होंने इक्कीस बार युद्ध किया था, जिनका फरसा किंवदंती था — वे थके हुए थे।

और उन्होंने यह छिपाया नहीं।

"लेकिन थकान और समाप्ति एक नहीं होती।" उन्होंने कहा।

"अंतर?"

परशुराम ने अग्नि में एक टहनी डाली। लपटें उठीं।

"थका हुआ आदमी आराम माँगता है। समाप्त हुआ आदमी छोड़ देता है।" उन्होंने कहा। "थकान एक संकेत है — कि तुम लड़ रहे हो, कि तुमने कुछ लगाया है। समाप्ति एक निर्णय है — कि अब नहीं।"

एक पल।

"मैं थका हुआ हूँ। लेकिन निर्णय नहीं लिया।"

अश्वत्थामा ने यह सुना।

"और मैं?" उसने पूछा। उस प्रश्न में एक ऐसी असुरक्षा थी जो उसने शायद पहले कभी किसी के सामने नहीं दिखाई थी। पाँच हज़ार साल में — जब कोई नहीं था जिससे पूछ सकता।

परशुराम ने उसे देखा।

"तुम भी।" उन्होंने कहा। सीधे। बिना किसी सांत्वना के — क्योंकि सांत्वना की ज़रूरत नहीं थी। "तुमने पाँच हज़ार साल में छोड़ा नहीं। यह छोटी बात नहीं है।"

अश्वत्थामा चुप रहा।

वह चुप्पी — जिसमें वह शब्द था जो उसे सुनना था।

कवच-कुंडल उसके पास था। वह पोटली जो उसने माणा से उठाई थी। उसने उसे छुआ — उस सुनहरी आभा को, उस सूर्य की उष्मा को। और वह स्वीकृति — जो गुफा में पहली बार महसूस हुई थी — वह फिर आई।

हाँ। सही जगह हो।

उस रात — उस पहाड़ पर, उस अग्नि के पास — अश्वत्थामा सोया।

गहरी नींद।

बिना स्वप्न के। बिना उन स्मृतियों के जो हर रात आती थीं। बिना उस घाव की जलन के जो उसे जगाए रखती थी।

केवल नींद।

वह नींद जो पाँच हज़ार साल में नहीं आई थी।

परशुराम ने उसे देखा — उस नींद में — और उन्हें वह बात याद आई जो उन्होंने बहुत पहले सुनी थी। कि प्रायश्चित की पहली निशानी यह नहीं होती कि सब ठीक हो जाए। पहली निशानी यह होती है कि एक रात — केवल एक रात — नींद आए।

उन्होंने अग्नि में एक और आहुति डाली।

और प्रहरी बने रहे।

✦ ✦ ✦

अध्याय पाँच

जहाँ सूर्य पहले उगता है

एक

सूर्योदय-तीर्थ — हिमालय का एक अज्ञात शिखर भोर से एक घंटे पहले

वह स्थान किसी नक्शे में नहीं था।

और यही उसकी रक्षा थी।

जो स्थान नाम से नहीं जाने जाते — वे उन तक पहुँचते हैं जिन्हें उनकी ज़रूरत होती है। बाकी सब उनके पास से गुज़र जाते हैं — बिना देखे, बिना जाने।

उस शिखर पर पहुँचने में उन्हें एक और रात लगी थी। पहाड़ों में वह रात — जो अँधेरी थी, जो ठंडी थी, जिसमें आकाश इतना साफ था कि तारे धरती पर उतरते लगते थे — उस रात के अंत में, भोर से ठीक पहले के उस क्षण में, वे उस शिखर पर थे।

चट्टानों के बीच एक छोटा-सा समतल था।

और उस समतल के मध्य में — एक शिला।

साधारण दिखती थी। कोई नक्काशी नहीं, कोई चिह्न नहीं। न कोई मंदिर, न कोई दीप। केवल पत्थर।

लेकिन अश्वत्थामा जब उसके पास गया — जब उसने उस पर हाथ रखा — तो उस ठंड में, उस ऊँचाई पर जहाँ पत्थर भी बर्फ जैसे होते हैं — वह शिला गर्म थी।

और उस गर्मी के साथ आई — एक सुगंध।

वही सुगंध जो गुफा में थी। जो कवच-कुंडल में थी।

सूर्य की सुगंध।

अश्वत्थामा ने आँखें बंद कीं। उस उष्मा को महसूस किया। उस पाँच हज़ार साल की ठंड में — जो केवल हिमालय की नहीं थी, जो भीतर की भी थी — वह गर्मी एक आश्वासन थी।

तुम सही जगह आए।

"यही है।" उसने कहा।

"यही है।" परशुराम ने पुष्टि की।

और तब — उस समतल के एक कोने से।

"देर हो गई थोड़ी।"

नारद मुनि।

वे कब आए — यह बताना कठिन था। शायद पहले से थे। नारद के साथ यह प्रश्न पूछना व्यर्थ है।

"बंधन टूट गया।" उन्होंने कहा। और उनकी आवाज़ में वह हल्कापन नहीं था जो उनकी पहचान है। "एक घंटे पहले। वे आएँगी — और इस बार पूरी शक्ति से।"

परशुराम ने फरसा उठाया।

अश्वत्थामा ने कवच-कुंडल को सीने से लगाया।

"नारद जी।" अश्वत्थामा ने पूछा — वह प्रश्न जो वह बहुत दिनों से पूछना चाहता था। "यह कब तक चलेगा?"

नारद ने उसे देखा।

"जब तक मनुष्य के भीतर वह भय है जो उसे अंधकार की ओर ले जाता है — तब तक। जब तक रसातल को वह मिलता रहेगा जिसकी उसे ज़रूरत है — एक डरा हुआ मनुष्य जो सब कुछ देने को तैयार हो — तब तक।"

"और हम?"

नारद ने उसे देखा। उस दृष्टि से जिसमें युगों का बोझ था।

"तुम जब तक हो — तब तक।" उन्होंने कहा। और उनके होंठों पर वह मुस्कान आई जो त्रासदी और करुणा के बीच कहीं होती है।

उत्तर से हवा आई।

ठंडी। भारी।

वे आ रही थीं।

— ✦ —

दो

प्रलय का आगमन

यह प्रलय एकाएक नहीं आई।

पहले आकाश बदला।

वह नीला जो भोर से पहले होता है — वह धीरे-धीरे काला हो गया। तारे बुझने लगे — एक-एक करके, जैसे कोई उन्हें बुझा रहा हो। जैसे आकाश स्वयं पीछे हट गया हो — उस चीज़ के लिए जगह बनाने को जो आ रही थी।

फिर भूमि काँपी।

उस शिखर के नीचे — बहुत गहरे — जैसे पृथ्वी को पता हो। पत्थरों की दरारों में जमी बर्फ में लकीरें आईं।

और तब — वे दिखीं।

उत्तर से।

पहाड़ों के उस पार से — जहाँ राक्षस ताल था, जहाँ वह काला जल था जो कभी नहीं सोता — रक्त-वर्णी आभा की एक दीवार उठी। इतनी ऊँची कि आकाश तक। इतनी चौड़ी कि उस पूरे क्षितिज को ढक ले। वह दीवार जो धुआँ नहीं थी, आग नहीं थी — कुछ और थी। वह अंधकार था जो प्रकाश की भाषा बोलता था।

और उस दीवार के आगे — महातामस।

वह आकृति जो न पूरी तरह थी, न पूरी तरह नहीं थी। रक्त-वर्णी धुएँ में एक विशालता — जो बनती थी, जो बिगड़ती थी, लेकिन जिसकी आँखें स्थिर थीं। वे दो बिंदु — दीप्त, रक्त-वर्णी — जो उस पूरे अँधेरे में एकमात्र अटल चीज़ थे।

वे सीधे अश्वत्थामा पर थे।

"द्रोणपुत्र।" वह आवाज़ आई — वह आवाज़ जो हवा में नहीं थी, उस रात में थी, उस शिखर में थी। "वह कवच-कुंडल अब हमारा होगा। आज — इस रात — यह समाप्त होगा।"

परशुराम ने फरसा उठाया।

वे उस विशाल दीवार के सामने — अकेले। एक मनुष्य — जो अमर था, जो हज़ारों साल पुराना था — लेकिन एक। उस असीमित अंधकार के सामने।

उन्होंने उस दीवार को देखा।

और उनके होंठों पर वे शब्द आए जो उन्होंने इक्कीस युद्धों में से किसी में नहीं कहे थे — क्योंकि पहले कभी ज़रूरत नहीं पड़ी थी।

"आओ।"

— ✦ —

तीन

परशुराम — एकाकी

जो हुआ — उसे शब्दों में बाँधना अपूर्ण होगा।

क्योंकि वह युद्ध शरीर का नहीं था। वह उस शक्ति का था जो धर्म से जन्म लेती है — और उस शक्ति का जो लालच से।

परशुराम ने पहला वार किया।

फरसा उस रक्त-वर्णी दीवार में गया — और जहाँ गया, वहाँ एक विस्फोट हुआ। सफेद। तीखा। उस आभा में एक छेद। लेकिन वह छेद एक साँस में भर गया — और उससे निकली एक लहर जो परशुराम की ओर आई।

परशुराम ने वह लहर अपने शरीर से झेली।

पीछे नहीं हटे। एक क़दम भी नहीं।

दूसरी लहर। तीसरी। चौथी। वे अनेक थीं — जैसे समुद्र की लहरें आती हैं, जो थकती नहीं, जो रुकती नहीं। हर वार के बाद परशुराम उन्हें कुछ पीछे धकेलते — और वे कुछ आगे आ जातीं।

उनके वस्त्र फटे।

उनकी भुजा पर वह निशान आया जो रसातल देता है — न घाव, न रक्त — बल्कि वह जलन जो भीतर जाती है।

वे रुके नहीं।

क्योंकि परशुराम जानते थे — यदि वे हटे, यदि एक क़दम भी पीछे गए — तो वह दीवार उस शिला तक पहुँच जाएगी। और जो उस शिला पर था — वह जो कर्ण का था, जो सूर्य का था — वह उस अंधकार के हाथ लग जाएगा।

इसलिए वे वहीं रहे।

महातामस आगे बढ़ा।

सीधे परशुराम की ओर — धीरे, जैसे उसे जल्दी न हो। जैसे वह जानता हो कि अंत क्या है।

"भार्गव।" उसने कहा। "तुम थक गए हो। मैं देख सकता हूँ। तुम्हारे वस्त्र फटे हैं। तुम्हारी भुजा जल रही है। हम अनंत हैं — और तुम एक। रुक जाओ।"

परशुराम ने उसे देखा।

एक पल।

उनके होंठों पर — वह मुस्कान जो उनके चेहरे पर दुर्लभ थी।

"मैंने पाँच हज़ार साल पहले एक व्यक्ति को यही कहते सुना था।" उन्होंने कहा। शांत। जैसे एक पुरानी बात याद हो। "वह भी कहता था — 'तुम थक जाओगे, हम नहीं।' वह भी अनंत था।"

एक पल।

"उसका नाम रावण था।"

और परशुराम ने फरसा उठाया।

वह वार — जो उन्होंने अपने जीवन में गिनती के बार किया था। जिसमें इक्कीस युद्धों की साधना थी, जिसमें शिव का दिया हुआ वह धातु था, जिसमें वह क्रोध था जो धर्म के लिए होता है — वह क्रोध जो अहंकार नहीं, संकल्प है।

महातामस हिला।

पहली बार — उस पूरे युद्ध में — वह हिला।

लेकिन वह नहीं टूटा।

और उसने — बजाय उस वार से हटने के — वह किया जो परशुराम ने नहीं देखा था। उस आभा ने फरसे को घेर लिया। और परशुराम को — उस पहाड़ की दीवार में फेंक दिया।

पत्थर टूटे।

वह आवाज़ — उस रात के सन्नाटे में — बहुत दूर तक गई।

परशुराम उस दीवार से टकराए। एक पल — स्थिर रहे। चोट थी। वह जलन थी। लेकिन उनकी आँखें बंद नहीं हुईं।

— ✦ —

चार

अश्वत्थामा का निर्णय

अश्वत्थामा ने यह देखा।

और उसके भीतर वह हुआ जो पाँच हज़ार साल में बहुत कम हुआ था।

वह आवरण — जो उसने एकाकीपन के वर्षों में बनाया था, वह दूरी जो उसने सबसे रखी थी, वह कठोरता जो उसकी रक्षा थी — वह एक पल में गई।

परशुराम — जिन्होंने उसे कभी नहीं जाना था, जो उसके साथ केवल इस यात्रा में थे — वे उस असीमित अंधकार के सामने अकेले खड़े थे। उस दीवार के सामने जो आकाश तक थी। उसके लिए।

नारद उसके पास आए।

"वह कवच-कुंडल।" उन्होंने कहा। धीरे। स्पष्ट। "उस शिला पर। अभी।"

"और यदि वे—"

"तुम्हें उस शिला तक पहुँचना होगा।" नारद ने कहा। "तीनों चाहिए — कवच का सूर्य-तेज, शिला की शक्ति, और तुम्हारी ऊर्जा। बिना तुम्हारे नहीं होगा।"

अश्वत्थामा ने परशुराम को देखा — जो उस दीवार से उठ रहे थे। जो फिर उस अंधकार की ओर बढ़ने वाले थे।

"परशुराम को रोको।" उसने नारद से कहा।

"रोकूँगा।"

अश्वत्थामा मुड़ा।

उसने उस रक्त-वर्णी दीवार को देखा — जो उस शिला और उसके बीच थी। महातामस — जो उस दीवार का नेतृत्व था, जो उस सारे अंधकार का केंद्र था — अब उसकी ओर देख रहा था।

अश्वत्थामा चला।

दौड़ा नहीं। जल्दी नहीं गया।

वह उसी गति से गया जो पाँच हज़ार साल के एकाकी जीवन ने दी थी — वह गति जिसमें थकान नहीं, डर नहीं। जिसमें केवल एक चीज़ होती है।

दिशा।

महातामस ने उसे देखा — और परशुराम से हटकर उसकी ओर आया।

"द्रोणपुत्र।" वह बोला। "बिना अस्त्र के? बिना कवच के? तुम केवल एक शापित व्यक्ति हो जो हज़ारों साल से भटक रहा है। तुम हमें नहीं रोक सकते।"

अश्वत्थामा रुका नहीं।

"मुझे रोकना नहीं है।" उसने कहा — शांत, जैसे यह बातचीत आवश्यक नहीं थी। "मुझे केवल उस शिला तक पहुँचना है।"

और वह महातामस के भीतर चला गया।

उस रक्त-वर्णी आभा के भीतर — सीधे — बिना रुके।

जो ठंड थी — वह उसे चारों ओर से घेर गई। वह भार जो रसातल की शक्तियों का था — वह उसके ऊपर था, उसके नीचे था, उसके भीतर था। उस अँधेरे में — जो सृष्टि के आरंभ से था, जो रावण से भी पुराना था — वह अकेला था।

माथे का घाव — जला।

आग की तरह। उस रात की ठंड में — जब पूरा शरीर सुन्न था — केवल वह घाव जल रहा था। जैसे कृष्ण का शाप उस क्षण अपनी पूरी शक्ति से जागा हो। जैसे हज़ारों साल की सारी पीड़ा — वह सब जो उसने देखा था, किया था, भोगा था — एक साथ आ गई हो।

अश्वत्थामा रुका नहीं।

उसने कवच-कुंडल को और कस के पकड़ा।

एक क़दम।

महातामस ने वह भार और बढ़ाया।

एक और।

अश्वत्थामा के पाँव भारी हो गए। उस अँधेरे में एक क़दम उठाना — अब एक लड़ाई थी। जैसे पृथ्वी स्वयं उसे रोक रही हो।

एक और।

शिला दिख रही थी।

उस अँधेरे में — उस रक्त-वर्णी आभा में — वह शिला। उसकी उष्मा। वह सुगंध।

तीन क़दम।

दो।

एक।

— ✦ —

पाँच

वह क्षण — जब पृथ्वी और आकाश मिले

अश्वत्थामा शिला तक पहुँचा।

उसने कवच-कुंडल को उस गर्म पत्थर पर रखा।

और उसी क्षण — महातामस ने वह किया जो उसने उस पूरे युद्ध में नहीं किया था। वह पूरी शक्ति से — अपनी समस्त ऊर्जा के साथ — उस एक व्यक्ति पर टूट पड़ा।

अश्वत्थामा घुटनों पर था।

उस शिला के पास। उस गर्म पत्थर के पास। उसके हाथ उस शिला पर थे।

"तुमने छुआ।" महातामस बोला — और उसकी आवाज़ में पहली बार एक तीव्रता थी जो पहले नहीं थी। "लेकिन यह काफी नहीं। वह कवच हमारा है। और तुम — तुम यहाँ से नहीं उठोगे।"

वह भार और बढ़ा।

वह ठंड और गहरी हुई।

अश्वत्थामा उस शिला पर झुका था — घुटनों पर, माथे पर वह जलन जो असहनीय थी, शरीर पर वह भार जो पर्वत जैसा था।

और तब — वह शिला — जो गर्म थी — उसकी उष्मा उसकी हथेलियों में उतरी।

धीरे।

जैसे कोई पहचाने।

वह सुगंध — सूर्य की सुगंध — उसके चारों ओर आई। उस अँधेरे में — उस रक्त-वर्णी आभा में — वह सुगंध एक प्रकाश की तरह थी।

और कवच-कुंडल — जो उस शिला पर था — उसकी आभा जागने लगी। शिला की उष्मा उसे छू रही थी। उसकी अपनी ऊर्जा — वह जो कर्ण की थी, जो सूर्य की थी — धीरे-धीरे जाग रही थी।

तीनों शक्तियाँ एक हो रही थीं।

और पूर्व में — आकाश में — एक रेखा।

इतनी पतली कि दिखे न। इतनी दूर कि महसूस न हो।

लेकिन थी।

सुनहरी।

सूर्य आ रहा था।

उस सूर्योदय-तीर्थ पर — जहाँ सूर्य का तेज सबसे पहले उतरता था — वह क्षण आया जिसका वह शिला युगों से प्रतीक्षा कर रही थी।

पहली किरण।

वह किरण उस पूरे आकाश में से — उस एकमात्र पथ पर — सीधे उस शिला पर पड़ी। उस शिला पर रखे कवच-कुंडल पर।

और उस स्पर्श में —

सूर्य ने अपना वह तेज दिया।

वह तेज जो उसने कभी कर्ण को दिया था — वह कवच बनाते समय, वह कुंडल बनाते समय। वह प्रेम जो एक पिता का अपने उस पुत्र के लिए था जिसे उसने दूर से देखा था, जिसे उसने छू नहीं सका था, जिसे उसने केवल यही दे सका था।

वह आभा जागी।

जैसे कोई सोई हुई ज्वाला को हवा मिले।

पहले एक धागा। फिर एक लौ। फिर एक ज्वाला। फिर — एक प्रकाश जो असहनीय था।

वह सुनहरा प्रकाश — जो कवच-कुंडल से, शिला से, सूर्य से, और अश्वत्थामा की अपनी ऊर्जा से — चारों से एक साथ फूटा — उस पूरे शिखर पर फैल गया।

और वह रक्त-वर्णी अँधेरा — जो आकाश तक था, जो असीमित था — सिकुड़ने लगा।

महातामस का वह भार — जो अश्वत्थामा को कुचल रहा था — एकाएक उठ गया।

जैसे किसी ने एक विशाल पत्थर हटा दिया।

अश्वत्थामा ने साँस ली।

और खड़ा हुआ।

— ✦ —

छः

प्रकाश और अंधकार का अंतिम संघर्ष

जो आगे हुआ — वह युद्ध नहीं था। वह एक स्वीकृति थी।

परशुराम उस दीवार पर फिर टूट पड़े — फरसा उठाए, उस जलन के साथ भी जो उनकी भुजा पर थी। उन्होंने एक के बाद एक वार किए — वे वार जो थकान के बावजूद भी उतने ही सटीक थे। हर वार के साथ वह दीवार कुछ और कमज़ोर हुई।

और उस शिला से उठता हुआ वह सुनहरा प्रकाश — वह फैलता रहा।

रसातल की शक्तियाँ — जो अंधकार की थीं, जो प्रकाश में नहीं रह सकती थीं — पीछे हटने लगीं।

पहले धीरे।

फिर तेज़।

जैसे ज्वार उतरता है — धीमे-धीमे, लेकिन रुकता नहीं।

वह रक्त-वर्णी दीवार — जो आकाश तक थी — सिकुड़ती गई। सिकुड़ती गई। जैसे कोई उसे उत्तर की ओर खींच रहा हो।

महातामस सबसे आखिर में पीछे हटा।

उसने अश्वत्थामा को देखा — उस प्रकाश में खड़े, माथे पर घाव जलता हुआ, शरीर थका हुआ, लेकिन आँखें स्थिर।

"यह समाप्त नहीं हुआ।" वह बोला।

"जानता हूँ।" अश्वत्थामा ने कहा।

"हम वापस आएँगे।"

"वह मैं तय करूँगा।"

और महातामस — उस प्रकाश से — पीछे हटा।

आकाश साफ हुआ।

एक-एक करके तारे फिर दिखे — जैसे वापस आ रहे हों।

और पूर्व में — सूर्योदय।

— ✦ —

सात

नारद का संकेत

नारद ने कहा — 'स्यमंतक।'

परशुराम और अश्वत्थामा दोनों ने उन्हें देखा।

"रसातल अपना अगला रास्ता पहले से जानती थी।" नारद ने कहा। "स्यमंतक मणि। द्वारका में। समुद्र के नीचे जहाँ कृष्ण की नगरी सोती है।"

"कौन है वहाँ?" परशुराम ने पूछा।

"एक विद्वान। एक अच्छा मनुष्य — जो डर गया है।"

अश्वत्थामा ने यह सुना। एक अच्छा मनुष्य जो डर गया है।

नारद — जैसे हवा आती है और जाती है — चले गए।

वह शिखर फिर शांत हो गया।

— ✦ —

आठ

दो अमर — एक विरासत — सूर्य का आशीर्वाद

परशुराम उस शिला के पास आए।

उनके वस्त्र फटे थे। वह निशान था जो रसातल ने दिया था। वे थके हुए थे — वह थकान जो परशुराम को नहीं होती, वह भी थी।

लेकिन वे खड़े थे।

अश्वत्थामा ने उन्हें देखा।

और बिना कुछ कहे — दोनों उस शिला के पास बैठ गए।

उस शिला पर जो कवच-कुंडल था — वह अभी भी था। सुरक्षित। वह सुनहरी आभा जो उसमें थी — वह अभी भी जल रही थी। धीमी अब, शांत — जैसे किसी युद्ध के बाद विश्राम हो।

परशुराम ने उसे देखा। अश्वत्थामा ने उसे देखा।

और दोनों ने — एक साथ — उस पर हाथ रखा।

उस स्पर्श में — वह उष्मा थी। वह सुगंध थी।

और ऊपर — पूर्व में — सूर्य।

वह सूर्योदय जो उस शिखर पर सबसे पहले होता था — वह अब पूरा था। सूर्य की किरणें उस शिला पर पड़ीं। उस कवच-कुंडल पर पड़ीं — जो दो थकी हुई हथेलियों के नीचे था।

और वह कवच-कुंडल — जो कर्ण का था, जो सूर्य का था — चमका।

वह चमक जो धातु की नहीं थी। वह चमक जो सूर्य के किसी अपने को पहचानने की थी — जब पिता अपने पुत्र को देखे, जब वह पुत्र जो दूर था, जो अकेला था, जो सबने भुला दिया था — उसे उसके पिता की आँखों में अपना प्रतिबिंब मिले।

वह सुनहरा प्रकाश — जो उस कवच-कुंडल से उठा — उन दोनों की हथेलियों को गर्म कर गया।

परशुराम के।

अश्वत्थामा के।

जैसे सूर्य कह रहा हो — यह मेरे पुत्र की विरासत है। तुमने इसे बचाया। मैं जानता हूँ।

अश्वत्थामा ने उस प्रकाश को महसूस किया।

उसके माथे का घाव —

एक पल के लिए।

केवल एक पल।

कम जला।

बुझा नहीं। कृष्ण का शाप ऐसे नहीं टूटता।

लेकिन कम जला।

और उस एक पल में — उस सुनहरे प्रकाश में, उस उष्मा में, उन दो हथेलियों के बीच उस कवच-कुंडल में — अश्वत्थामा ने जो समझा वह पाँच हज़ार साल में नहीं समझा था।

प्रायश्चित वह नहीं होता जब सब मिट जाए।

प्रायश्चित वह होता है जब एक दिन — एक क्षण — सूर्य की पहली किरण तुम्हारी हथेलियों में उतरे। और वह गर्मी तुम्हें बताए — दिशा सही है।

वह खड़ा हुआ।

परशुराम भी खड़े हुए।

दोनों ने एक-दूसरे को देखा — उस प्रकाश में, उस सुनहरी भोर में। दो अमर। दो थके हुए। दो जो अभी एक युद्ध से लौटे थे।

और उनके हाथों में — वह कवच-कुंडल।

सूर्य की किरणें उस पर पड़ती रहीं।

और वह चमकता रहा — जैसे सूर्य अपने पुत्र को आशीर्वाद दे रहा हो।

जैसे कर्ण — जो गया था, जो बहुत पहले गया था — उस प्रकाश में अभी भी था।

✦ ✦ ✦

भाग एक का उपसंहार

उस चोटी पर — हिमालय के उस अज्ञात शिखर पर — वह शिला अभी भी है।

जो उसे खोजने जाएँ — वे उसे नहीं ढूँढ पाते। पहाड़ रास्ता नहीं देता। लेकिन वह है।

कर्ण की विरासत — जो उसने दी थी स्वेच्छा से — अब उस भूमि पर है जहाँ रसातल का अँधेरा नहीं पहुँचता। जहाँ हर सुबह सूर्य की पहली किरण उसे छूती है।

राक्षस ताल के जल में — वह रक्त-वर्णी आभा अभी भी है। वे हारी नहीं हैं। वे प्रतीक्षा कर रही हैं।

और वह तांत्रिक — जिसने वह मंत्र पढ़ा था — वह भी कहीं है। उसे अभी नहीं पता कि उसने क्या किया। लेकिन वह जल्दी जानेगा। और तब रसातल के पास वह औज़ार होगा जो सबसे खतरनाक है — एक डरा हुआ मनुष्य।

दो चिरंजीवी उस चोटी से उतरे — उत्तर से नहीं, दक्षिण से। समुद्र की ओर।

परशुराम आगे। अश्वत्थामा पीछे।

दो क़दम की दूरी — जो माणा में थी।

लेकिन वह दूरी — जो पहले खाई थी — अब कुछ कम थी।

केवल दो क़दम। लेकिन इस बार — साथ के दो क़दम।

— ✦ —

— भाग एक : कवच-कुंडल — समाप्त —

✦ ✦ ✦

भाग दो की झलक — स्यमंतक

समुद्र के नीचे — द्वारका में — एक खोज चल रही है।

एक पुरातत्त्ववेत्ता जो नहीं जानता कि उसने क्या पाया। स्यमंतक — वह मणि जो सूर्य का दिया हुआ था, जो जहाँ रहे वहाँ समृद्धि लाती थी, लेकिन जो अपात्र के हाथ में विनाश।

रसातल की शक्तियाँ — जो कवच-कुंडल से हारी हैं — अब एक नए मार्ग पर हैं। इस बार उन्होंने एक मनुष्य को चुना है। आचार्य कालकेय — एक विद्वान जो डरा हुआ है। मृत्यु से डरा हुआ। और उस डर ने उसे वहाँ ले जाया जहाँ नहीं जाना था।

परशुराम और अश्वत्थामा के सामने इस बार वह शत्रु होगा जो सबसे कठिन होता है — एक ऐसा मनुष्य जो बुरा नहीं, लेकिन जिसने बुराई का रास्ता चुना है।

और उस रास्ते पर — दोनों में पहली बार असहमति होगी।

"वह मनुष्य है।" अश्वत्थामा कहेगा। "उसे एक मौका मिलना चाहिए।"

"वह जो रास्ता चुन चुका — उसमें मौके नहीं होते।" परशुराम कहेंगे।

यह असहमति — जो उनके रिश्ते की सबसे कठिन परीक्षा होगी — वह द्वारका के नीले पानी में सुलझेगी। या नहीं सुलझेगी।

द्वारका की गहराइयों में — कृष्ण की नगरी जो सोती है — एक रहस्य है जो दोनों को आश्चर्यचकित करेगा। वह रहस्य जो कर्ण से जुड़ा है। वह धागा जो कवच-कुंडल से स्यमंतक तक जाता है।

— ✦ —

भाग दो — स्यमंतक — शीघ्र आएगा।

✦ ✦ ✦